International Journal of Social Science and Economic Research

ISSN: 2455-8834

Volume:02, Issue:12 "December 2017"

PRAACHEEN UTTAR BHAARAT MEIN GRAAMEEN EVAN NAGAREEY JEEVANAH : EK TULANAATMAK VIVECHAN

प्राचीन उत्तर भारत में ग्रामीण एवं नगरीय जीवनः एक तुलनात्मक विवेचन

फ़रज़ाना ख़ान

7, प्रोफ़ेसर्स रेज़ीडेंसी, साहित्य पुरम् कॉलोनी, सातवां बुज़ुर्ग, निगोही रोड, शाहजहाँपुर-242001 (उ0प्र0)

साम्राज्य-भोगी गुप्तों के पतन के पश्चात् प्राक्-मुस्लिम युग (लगभग सन्-500 से 1200 ई0) का आविर्भाव हुआ। इस मध्य महत्त्वपूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक परिवर्तन, जिसने जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित किया, भूमिदान तथा उससे उत्पन्न सामंती-व्यवस्था का विस्तृत रूप से अपनाया जाना था। भूमि के असमान वितरण एवं सैनिक शक्ति ने अनेक सामंतीय पदों का सृजन किया, जो पारम्परिक वर्ण-नियमों को भेदते हुए जन-जीवन में व्याप्त होते जा रहे थे।

5वीं शताब्दी के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि राजा चोरों को दण्डित करने का अपना अधिकार आमतौर पर नहीं छोड़ता था। यह अधिकार राज्य सत्ता का एक मुख्य आधार था। परन्तु कालान्तर में राजा अपने उपर्युक्त अधिकार को ही नहीं, अपितु परिवार, सम्पत्ति और व्यक्ति के प्रति अपराध करने वालों को दण्ड देने का अधिकार भी ब्राह्मणों को देने लगा। इस प्रकार विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया अपनी स्वाभाविक अवस्था में पहुँच गई। मध्य भारत और पश्चिमी भारत में कुछ उदार शासकों ने दान किए गए गाँवों में मुक़दमों की सुनवाई का अधिकार भी ग्रहणकर्त्ताओं को सौंप दिया। उनके दान-पत्रों में 'अभ्यंतर-सिद्धि'[1] शब्द का प्रयोग हुआ है। यदि हम इसका अर्थ ग्राम के आपसी विवादों का निपटारा लगाएँ, तो असंगत नहीं होगा।[2] इस अधिकार की प्राप्ति के पश्चात् सम्बन्धित गाँव आत्मनिर्भर राजनीतिक इकाई बन जाता था।

समकालीन ग्रन्थों में इस बात के स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि इस प्रकार के विभिन्न पद केवल क्षत्रियों तक ही सीमित नहीं थे। भूमि के दान और विभाजन के फलस्वरूप एक नवीन शिक्षित वर्ग (कायस्थ) का उदय हुआ। कृषकों के रूप में शूद्रों का रूपान्तरण और वैश्यों के स्तर में शूद्र स्तर तक की गिरावट से भी वर्ण-व्यवस्था में विशिष्ट परिवर्तन हुआ। यहाँ तक कि बंगाल और दक्षिण भारत में स्थापित नवीन ब्राह्मणीय-व्यवस्था में मुख्य रूप से केवल ब्राह्मणों एवं शूद्रों का प्रावधान किया गया था।

इस युग का सर्वाधिक विस्मयकारी परिवर्तन जातियों का प्रगुणन था, जिसने ब्राह्मण, क्षत्रिय, राजपूत और शूद्रों तक सभी को प्रभावित किया।

ग्रामीण जीवनः

 Copyright © IJSSER 2017, All rights reserved

ISSN: 2455-8834

Volume:02, Issue:12 "December 2017"

ग्राम, प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। इसे स्वायत्त शासन प्राप्त था। 'हर्षचरित' में महत्तरों का उल्लेख है। ये ग्राम परिषद के सदस्य थे। हर्ष की सोनीपत राजमुद्रा में ग्रामाक्ष पटलिक का उल्लेख है। उसकी सहायता के लिए करणिक (लिपिक) होते थे। ग्राम-परिषद में अन्य सदस्य भी होते थे, जैसे-

1. ग्रामिक (गाँव का मुखिया)
2. कुटुम्बिन (गृहस्थ ग्रामीण)

ग्राम का अपना अधिकरण (कार्यालय) होता था। ग्राम-परिषद वर्तमान पंचायत की भाँति गाँव में मरम्मत, निर्माण, शिक्षा, सफ़ाई, प्रकाश, जल, बाज़ार तथा झगड़ों को निपटाने आदि के कार्य करती थी। इसकी अनुमति के बिना भूमि का क्रय-विक्रय नहीं हो सकता था।

समाज में ब्राह्मणों का सर्वश्रेष्ठ स्थान था। केवल धार्मिक-ग्रन्थ से ही नहीं, वरन् विदेशी यात्रियों के वृत्तान्त से भी इस बात की पुष्टि होती है। ह्वेनसांग के विवरण से पता चलता है कि समाज में चार वर्णों के अतिरिक्त कई जातियाँ एवं उप-जातियाँ थीं। वह अनेक मिश्रित जातियों का भी उल्लेख करता है। उसके अनुसार कसाई, मछुए, भंगी, नट, जल्लाद आदि अछूत समझे जाते थे। वे गाँवों और नगरों के बाहर निवास करते थे। उनके मकानों पर पहचान-चिन्ह लगे हुए थे।

गाँवों की कृषि-योग्य भूमि अत्यन्त उर्वर थी। उत्पादन अधिक होता था। विभिन्न प्रकार की सब्ज़ियों तथा फलों की उपज की जाती थी। लोगों का मुख्य आहार गेहूँ की चपातियाँ, भुने हुए दाने, चीनी, घी और दूध के पदार्थ थे। कुछ अवसरों पर मछली, मृग और भेड़ का माँस भी खाया जाता था। गाय तथा कुछ जंगली जानवरों का माँस पूर्णतः वर्जित था। जो व्यक्ति नियमों का उल्लंघन करता था, उसे गाँव से निष्कासित (excommunicated) किया जा सकता था।[3]

लोगों के मकानों का प्रवेश-द्वार पूर्व दिशा की ओर खुलता था। मुहल्ले और गलियाँ घुमावदार थीं। रास्तों पर लोग अपने बाएँ से चलते थे। गाँव के सामान्य जनों के मकानों की दीवारें मिट्टी की और छतें सरपत, लकड़ी के द्वारा बनाकर उनको खपरैलों से ढँक दिया जाता था। अमीर लोगों के मकानों की दीवारें ईंट से बनाकर छतों को खपरैलों से ढँक दिया जाता था।[4] दीवारें चूने या गारे से ढँकी थीं और पवित्रता के लिए उसमें गोबर मिला दिया जाता था।

ग्रामीण लोग रेशम, ऊन और सूत के कपड़े बनाने की कला जानते थे। 'कौशेय' कपड़ा, रेशम और सूत से बनाया जाता था। सन, जूट आदि से प्राप्त वस्तुओं से 'क्षौम' कपड़ा या लिनन बनाया जाता था। तीसरे प्रकार के पहनने की वस्तु थी 'कम्बल' । चौथे प्रकार की चीज़ थी, किसी जंगली जानवर के ऊन का बना कपड़ा, जो बहुत अच्छा, मुलायम और आसानी से कातने-बनाने योग्य होता था।[5]

 Copyright © IJSSER 2017, All rights reserved

ISSN: 2455-8834

Volume:02, Issue:12 "December 2017"

युवान चांग के उपर्युक्त वर्णन से यह विदित होता है कि ग्रामीण लोग कताई, बुनाई की कला से परिचित थे। सामान्य जनों का वस्त्र साधारणतया 'क्षौम' से ही बनता था, क्योंकि अन्य की तुलना में यह सस्ता होता था और सर्व सुलभ भी था।

खेती का काम शूद्रों के हाथों में था। यद्यपि वे खेत के मालिक नहीं होते थे। बैल एवं भैसों के माध्यम से खेत की जुताई की जाती थी।

जाति-प्रथा ने हिन्दू-समाज को जकड़ रखा था। ब्राह्मण धर्म-कर्म करते थे। क्षत्रिय शासक-वर्ग एवं सैनिक-वर्ग में शामिल थे। वैश्य व्यापारिक तथा वणिक थे। शूद्र खेती तथा परिचर्या का कार्य करते थे।

क्षत्रिय और ब्राह्मण अपनी पोशाक की दृष्टि से साफ़ रहते थे और घरेलू एवं समृद्ध जीवन व्यतीत करते थे। लोग प्रायः नंगे पाँव रहते थे और बहुत कम लोग पादुकाएँ पहनते थे। सर्वसाधारण लोग यद्यपि कम बुद्धि के थे, फिर भी वे सच्चे और विश्वसनीय थे। घर के मामले में वे निष्कपट और न्याय करने में उदार थे। किसी अन्य योनि में जन्म लेने से वे बहुत डरते थे और इस संसार की वस्तुओं को वे अधिक महत्त्व नहीं देते थे। अपने आचरण में वे धोखेबाज़ या द्रोही नहीं थे।

अन्तर्जातीय विवाह नहीं होते थे। एक ही जाति के विभिन्न वर्गों में भी विवाह सीमित थे। बाल-विवाह प्रचलित था। भोजन तथा विवाह की दृष्टि से विभिन्न जातियों में कुछ नियंत्रण थे, लेकिन उनमें सामाजिक आचार-व्यवहार के मार्ग में ये नियंत्रण बाधक नहीं थे।

ह्वेनसांग ने भारतीयों के भोजन की शुद्धता की ओर विशेष ध्यान दिया। उनके अनुसार भारतीय भोजन में प्याज़ और लहसुन का प्रयोग कम करते थे। उन्हें खानेवाले को समाज से निष्कासित कर दिया जाता था। विधवा-विवाह की प्रथा नहीं थी। ग्रामीण जीवन में पर्दे की प्रथा विद्यमान थी। सती-प्रथा का प्रचलन था। समाज के नियमों को तोड़नेवाले की खुलेआम भर्त्सना की जाती थी। छोटे से दोष के लिए उसे मौन धारण करने के लिए बाध्य किया जाता था।

शिक्षा धार्मिक थी और उसे विहारों के माध्यम से प्रसारित किया जाता था। उस समाज की प्रचलित लिपि ब्राह्मी कही जाती थी। संस्कृत विद्वान-वर्ग की भाषा थी। एक व्यक्ति की शिक्षा नौ वर्ष की आयु से तीस वर्ष की आयु तक चलती थी। शिक्षा पूर्ण होने पर शिष्यों द्वारा गुरु को गुरु-दक्षिणा देने का प्रावधान था।

लोगों को कर कम देने पड़ते थे। उनसे ली गई सेवाएँ हल्की थीं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी वस्तुओं को शान्तिपूर्वक अपने पास रखता था। निर्वाह के लिए सभी खेती करते थे। जो राज्य की भूमि पर खेती करते थे, वे उत्पादन का 6ठा भाग शुल्क के रूप में देते थे। व्यापार करनेवाले व्यक्ति अपने व्यवसाय के कारण इधर-उधर यात्रा करते थे। थोड़ा-सा शुल्क देने पर नदियाँ एवं चौकियाँ यात्रियों के लिए खोल दी जाती थीं।

 Copyright © IJSSER 2017, All rights reserved

ISSN: 2455-8834

Volume:02, Issue:12 "December 2017"

सार्वजनिक कार्यों के लिए श्रम की आवश्यकता होने पर श्रमिकों को लगाया जाता था, लेकिन उन्हें इसके लिए पारिश्रमिक दिया जाता था।

इस युग में स्मृतिकार पाराशर ने ब्राह्मण के लिए कृषि को एक सामान्य व्यवसाय बताया है, बशर्ते कि वह स्वयं खेती न करें। प्रायश्चित् के रूप में उसे उपज का 1/20 भाग देवताओं को, 1/30 भाग ब्राह्मणों को और 6 ठा भाग राजा को देना पड़ता था। जिन ब्राह्मणों को भूमि बड़े पैमाने पर दी जाती थी, वे शूद्र कृषकों द्वारा खेती करवाते थे। 'विष्णु धर्मोत्तर पुराण' में भूमि के साथ दास तथा कर्मकारों के दान देने का उल्लेख है। मध्य प्रदेश, प्राच्य तथा कुछ अन्य स्थानों के ब्राह्मण आचार में कट्टर नहीं थे। इन देशों के ब्राह्मण स्वयं अपने हाथ से खेती करते थे। ह्वेनसांग ने टक्क देश के ब्राह्मण को स्वयं खेती करते देखा।

ह्वेनसांग तथा इब्नखुर्दादव ने कृषि को शूद्रों का सामान्य व्यवसाय बताया है। वे कृषि का सम्बन्ध वैश्यों से नहीं बताते। व्यास, पाराशर और वैजयन्ती में एक कृषक-वर्ग का उल्लेख है, जिन्हें 'कुटुम्बी' कहा गया है। इन्हें शूद्रों के अन्तर्गत रखा गया है। एक और वर्ग 'कीनाश का उल्लेख आता है। प्राचीन ग्रन्थों में 'कीनाश' वैश्य हैं। किन्तु 8वीं शताब्दी के 'नारद स्मृति के टीकाकार असहाय ने 'कीनाशों को शूद्र बताया है। इन किसानों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है:

1. स्वतन्त्र किसान (संभवतः कुटुम्बी इसी श्रेणी के थे) जो भूमि के स्थाई स्वामी थे और राज्य को अनेक प्रकार के कर देते थे।

2. वे किसान जो बटाई पर खेती करते थे। इन्हें 'त्रयधसीरिन' या 'सीरिन' कहा गया है। इन्हें उपज का 1/3 या 1/4 भाग मिलता था।

किसान मजदूरों को उपज का 1/10 से 1/4 भाग तक मिलता था। अधिकतर शूद्र किसान इसी श्रेणी के थे। आदिवासी कृषक-वर्ग को हिन्दू-समाज में समाविष्ट होने पर शूद्र-वर्ग में रखा गया। 'हर्षचरित में आदिवासी कृषकों का उल्लेख है। गुप्तकाल के अभिलेखों में शिल्पी (बढई) के खेत का उल्लेख भी है। इस काल में भी अनेक शिल्पी कृषि को आजीविका का साधन समझते थे। निःसन्देह इस युग में शूद्र कृषकों की संख्या में काफ़ी वृद्धि हुई। वे बड़े भू-स्वामी भले ही न रहे हों, किन्तु स्वतन्त्र थे। वे स्वयं खेती करते थे और अनेक प्रकार के कर देते थे। करों की अधिकता के कारण वे आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न नहीं थे। यह मत प्रकट किया गया कि इस युग में दासों की स्थिति में सुधार हुआ और वे कृषिदास बन गए। कुछ तो सुधरती हुई आर्थिक स्थिति की वजह से और कुछ इसलिए कि बदलती हुई परिस्थितियों में समाज में शूद्रों की संख्या बढ़ गई थी। ब्राह्मणों को यजमानों से आर्थिक लाभ था। शूद्रों की धार्मिक स्थिति में सुधार हुआ। शूद्रों को दो वर्गों में विभक्त किया गया- 'सत और 'असत'। सत शूद्रों को पौराणिक विधि से संस्कार, पंचमहायज्ञ इत्यादि धार्मिक कृत्य करने का अधिकार दे दिया गया।

 Copyright © IJSSER 2017, All rights reserved

ISSN: 2455-8834

Volume:02, Issue:12 "December 2017"

नगरीय जीवन:

भारत के नगरों के विषय में ह्वेनसांग ने इस प्रकार लिखा है-''नगरों में अन्तःद्वार है, दीवारें ऊँची और मोटी हैं, मुहल्ले और गलियाँ घुमावदार हैं और सड़कें भी टेढ़ी हैं। मुख्य मार्ग गन्दे हैं और दोनों ओर की दुकानों पर उपयुक्त चिन्ह लगा दिए गए हैं। कसाई, मछियारे, नाचने वाले, जल्लाद और भंगी आदि शहर से बाहर रहते हैं। आते-जाते समय ये लोग जब तक अपने घर न पहुँच जाएँ, सड़क के बाईं ओर चलते हैं। उनके घर नीची दीवारों से घिरे हुए हैं और उन्हें उपनगर (suburbs) माना जाता है। धरती नरम और कीचड़ वाली है, इसलिए नगर की दीवारें ईटों या टाइलों की बनाई जाती हैं। दीवारों के ऊपर के मीनार लकड़ी या बाँस के बनाए जाते हैं। घरों की अटारियाँ और छज्जे लकड़ी के हैं, जो मिट्टी या चूने के पलस्तर तथा टाइलों से ढके हुए हैं। विभिन्न इमारतों की शक्ल चीन की इमारतों जैसी ही हैं। कुछ रिवाज़ों के अनुसार वे विभिन्न ऋतुओं में फूल बिखेरते हैं। संघारामों (विहारों) का निर्माण कुशलता से किया जाता है। चारों कोणों पर तीन मन्ज़िलों के बुर्ज बनाए जाते हैं। शहतीर और उभरे हुए सिरों पर विभिन्न आकारों में खोदकर मूर्तियाँ बनाई गई हैं। द्वारों, खिड़कियों और नीची दीवारों पर बहुत से चित्र बनाए जाते हैं। भिक्षुओं के कमरे अन्दर से व्यवस्थित और बाहर से सादे हैं। इमारत के बीचो-बीच एक ऊँचा और चौड़ा हाल है। अनेक मन्ज़िलों के सदन और बिना किसी नियम के अलग-अलग ऊँचाई और आकार की बुर्जियाँ हैं। द्वार पूर्व की ओर खुलते हैं और राज सिंहासन भी पूर्व की ओर मुँह किए हुए है। उनकी पोशाक कटी हुई या सजी हुई नहीं हैं। बहुधा वे उजले सफ़ेद कपड़े पहनते हैं। रंगदार या सजे हुए कपड़े का वे मान नहीं करते। पुरुष कमर पर अपने कपड़े बाँधते हैं और फिर उन्हें बग़ल के नीचे इकट्ठा करके शरीर पर बाईं ओर लटका देते हैं।''[6]

नगरवासियों की समृद्धि से ह्वेनसांग अत्यन्त प्रभावित थे। वह बताते हैं कि लोगों का जीवन-स्तर बहुत ऊँचा था। नगरवासी सोने और चाँदी, दोनों तरह के सिक्कों का प्रयोग करते थे। कौड़ियाँ और मोती भी मुद्रा के रूप में प्रचलित थे। लोगों का आहार था- गेहूँ की चपातियाँ, भुने हुए दाने, चीनी, चावल, घी और दूध के पदार्थ। कुछ अवसरों पर मछली, मृग और भेड़ का माँस भी खाया जाता था। गाय तथा कुछ जंगली जानवरों का माँस पूर्णतः वर्जित था। जो व्यक्ति नियमों का उल्लंघन करता था। उसे निष्कासित किया जा सकता था।[7]

ह्वेनसांग के अनुसार कई नए नगर बन गए थे और पुराने नगर समाप्त हो रहे थे। पाटलिपुत्र अब उत्तरी भारत का प्रमुख नगर नहीं रहा था। उसका स्थान कन्नौज ने ले लिया था।[8] नगरों में संघारामों और मन्दिरों की भरमार थी। कन्नौज में ही सैकड़ों संघाराम और 200 हिन्दू मन्दिर थे। कन्नौज की समृद्धि उसके ''ऊँचे भवनों, सुन्दर उद्यानों, स्वच्छ जल के तालाबों और विचित्र स्थानों से एकत्रित दुर्लभ वस्तुओं के अजायबघरों में थी। इसके नागरिकों की लुभावनी चितवन, उनके रेशमी वस्त्रों तथा ज्ञान और कला के प्रति उनकी श्रद्धा से भी यह बात उतनी ही स्पष्ट है। प्रयाग एक महत्त्वपूर्ण स्थान बन चुका था। श्रावस्ती अब नष्ट हो रहा था और कपिलवस्तु में केवल 30 भिक्षु थे। नालन्दा और वल्लभी जैसे स्थानों में बौद्ध-धर्म का ज़ोर था।

 Copyright © IJSSER 2017, All rights reserved

ISSN: 2455-8834

Volume:02, Issue:12 "December 2017"

ह्वेनसांग के कथनानुसार-''राजा तथा व्यक्तियों के आभूषण असाधारण हैं। क़ीमती पत्थर का 'तारा' और हार उनके सिर के आभूषण हैं और उनके शरीर अँगूठियों, कंगनों तथा मालाओं से सुसज्जित हैं। धनवान व्यापारी केवल कंगन पहनते हैं। यद्यपि लोग सादे कपड़े पहनते थे, तथापि वे आभूषणों के शौकीन प्रतीत होते थे।"[9]

नगरों में उद्योग-धन्धे प्रचलित थे। औद्योगिक जीवन बड़ी-बड़ी श्रेणियों, जातियों तथा निगमों पर आधारित था।

ह्वेनसांग के शब्दों में- क्षत्रिय, और ब्राह्मण अपनी पोशाक आदि की दृष्टि से साफ़-सुथरे हैं। वे घरेलू और समृद्ध जीवन व्यतीत करते हैं। प्रायः नंगे पाँव जाते हैं। बहुत कम लोग पादुकाएँ पहनते हैं। वे अपने दाँतों पर लाल या काले निशान लगाते हैं। अपने बाल ऊपर बाँधते हैं और कानों में छिद्र करते हैं। शारीरिक सफ़ाई का वे बहुत ध्यान रखते हैं। खाने से पहले वे हाथ-मुँह धो लेते हैं। जूठन कभी नहीं खाते हैं। प्रयोग करने के बाद लकड़ी तथा मिट्टी के बर्तन नष्ट कर दिए जाते हैं। धातु के बर्तनों को रगड़कर माँजा जाता है। खाने के बाद वे अपने मुँह को दातुन से साफ़ करते हैं और हाथ तथा मुँह धो लेते हैं।[10]

समाज में विधवा-विवाह की प्रथा नहीं थी। उच्च वर्गों में पर्दे की प्रथा नहीं थी। यह माना जाता है कि ह्वेनसांग के उपदेश सुनते समय राज्यश्री पर्दा नहीं करती थीं। समाज में सती-प्रथा का प्रचलन था। रानी यशोमति अपने पति प्रभाकर वर्द्धन के साथ सती हो गईं। राज्यश्री भी सती होने वाली थीं और उसकी जीवन रक्षा बड़ी कठिनाई से की गई।

अनुशासन बौद्ध धर्म-ग्रन्थों के नियमों के अनुकूल था। उसका उल्लंघन करने पर कड़ा दण्ड दिया जाता था। ह्वेनसांग कहते हैं-''ऐश्वर्य के पीछे भागना सांसारिक जीवन का लक्षण है और ज्ञान की खोज धार्मिक जीवन का लक्षण है। धर्म को अपनाने के बाद धर्मनिरपेक्ष जीवन में आना अपमानजनक समझा जाता है। समाज के नियम को तोड़नेवाले की खुलेआम भर्त्सना की जाती है। "शिक्षा धार्मिक थी और उसे विहारों के माध्यम से प्रसारित किया जाता था। धार्मिक पुस्तकें लिखी हुई थीं। नगरवासी ब्राह्मी लिपि का प्रयोग करते थे। नगरवासी आपस में गोष्ठी का आयोजन करते थे। गोष्ठी में विजेता को सम्मानित करने का भी रिवाज़ था।

शासन-प्रणाली के विषय में ह्वेनसांग ने इस प्रकार लिखा है- शासन-प्रद्धति हितकारी सिद्धान्तों पर आधारित है, इसलिए कार्यकारिणी सरल है। परिवारों का पंजीयन नहीं किया जाता। व्यापार करने वाले व्यक्ति अपने व्यवसाय के कारण इधर-उधर यात्रा करते हैं। बेगार-प्रथा नगरीय जीवन की विशेषता नहीं थी। पारिश्रमिक किए गए काम के अनुपात से ही दिया जाता है। ह्वेनसांग आगे कहते हैं- ''अपराधी और विद्रोही संख्या में कम हैं और वे केवल कभी-कभी कष्टप्रद होते हैं। यदि नियमों को तोड़ा जाए या शासक की शक्ति का उल्लंघन किया जाए तो अपराधी की खोज की जाती है और अपराधी को दण्ड दिया जाता है। शारीरिक दण्ड नहीं दिया जाता है, उन्हें केवल जीने और मरने के लिए छोड़ दिया जाता है और उन्हें मनुष्यों में नहीं

 Copyright © IJSSER 2017, All rights reserved

ISSN: 2455-8834

Volume:02, Issue:12 "December 2017"

गिना जाता। जब नैतिकता या न्याय के नियमों का उल्लंघन किया जाता है या पुरुष अपनी पितृ-भक्ति में दोषी या बेईमान होता है तो उसके नाक और कान काट दिए जाते हैं और उसे मृत्यु तक जंगलों में घूमने के लिए नगर से निकाल दिया जाता है। इनके अतिरिक्त अन्य अपराधों में दण्ड के स्थान पर हल्का ज़ुर्माना लिया जाता है। अपराध की खोज करते समय दोष-स्वीकृति का प्रमाण प्राप्त करने के लिए बल-प्रयोग नहीं किया जाता। अभियुक्त से प्रश्नोत्तर के समय यदि वह साफ़-साफ़ उत्तर दे तो उसका दण्ड घटा दिया जाता है, लेकिन वह हठपूर्वक अपराध को स्वीकार न करे तो सत्य की गहराई तक पहुँचने के लिए परीक्षा को प्रयुक्त किया जाता है। "वह आगे लिखते हैं-''राज्य के मन्त्री तथा साधारण कर्मचारी सभी के पास अपनी-अपनी भूमि है और उनके निर्वाह का भार उन नगरों पर है, जिनमें उन्हें नियुक्त किया जाता है।" प्रतीत होता है कि राज्य के छोटे कर्मचारियों को उनके कार्य के अनुसार नक़द या भूमि के रूप में वेतन दिए जाते थे।

तत्कालीन व्यवस्था में तीन प्रकार के करों का उल्लेख मिलता है, यथा- 'भाग', 'हिरण्य' और 'बलि'। भाग भूमिकर था और पदार्थ के रूप में दिया जाता था। हिरण्य करों को कृषक या व्यापारी नक़द दिया करते थे। यह कहना कठिन है कि 'बलि' शब्द से अभिप्राय किन करों से था। नगरों में व्यापारिक वस्तुओं पर नाप और तौल के अनुसार कर लिए जाते थे।

नगरों में सुरक्षा के नाम पर नागरिकों में हमेशा भय बना रहता था। चोर-डाकुओं के मन में राज्य का भय न था। इसका प्रमाण यह है कि स्वयं ह्वेनसांग को डाकुओं ने राजधानी के निकट लूट लिया था। भाग्यवश उसके जीवन की रक्षा हो गई। नगरों की प्रशासनिक व्यवस्था गुप्तों और मौर्यों की तुलना में बेहद कमज़ोर एवं ढीली-ढाली थी।

नगरों में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए पुलिस-विभाग की स्थापना की गई थी। पुलिस कर्मियों को 'चाट' या 'भाट' कहा गया है। दण्डपाशिक तथा दाण्डिक पुलिस-विभाग के अधिकारी होते थे। पुलिस कर्मियों के दुर्व्यवहार से नागरिक अकसर दुःखी रहते थे।

नगरवासी धार्मिक मामलों में स्वतन्त्र थे। इच्छानुसार वे किसी भी सम्प्रदाय में शामिल हो सकते थे, किसी भी देवी-देवता की पूजा कर सकते थे, यद्यपि बौद्ध-धर्म को राजकीय धर्म घोषित किया गया था। नगरों की जनता शैव और वैष्णव-धर्म को भी मानती थी और उसका अनुसरण करती थी। नागरिक जीवन में धार्मिक सहिष्णुता विद्यमान थी। यद्यपि राजा के द्वारा कभी-कभी धार्मिक असहिष्णुता का भी प्रदर्शन हो जाया करता था। जैसे कि कन्नौज की महाधर्मसभा में हुआ था। कुछ लोग सूर्य के भी उपासक थे। हर्षवर्द्धन के समय तक धर्मों तथा संप्रदायों की संख्या बहुत बढ़ गई थी। हिन्दू-धर्म के अन्तर्गत शैव-सम्प्रदाय सर्वाधिक लोकप्रिय था। 'हर्षचरित' के अनुसार- ''थानेश्वर के प्रत्येक घर में भगवान शिव की पूजा होती थी।" [11]

 Copyright © IJSSER 2017, All rights reserved

ISSN: 2455-8834

Volume:02, Issue:12 "December 2017"

कुलीन परिवार के लोग कई विवाह करते थे। केवल कुलीन परिवार की ही कन्याएँ शिक्षित होती थीं। कुलीन परिवारों में परदा-प्रथा नहीं थी। सामान्यतः लोगों का जीवन सुखी और आमोदपूर्ण था। कुछ लोग मदिरा का भी सेवन करते थे। साधारणतः लोगों को श्वेत वस्त्र (बिना कते एवं बिना सिले) ही प्रिय थे। स्त्री तथा पुरुष दोनों ही आभूषण धारण करते थे। कृषि के लिए सिंचाई की उत्तम व्यवस्था थी। 'हर्षचरित' में सिंचाई के साधन के रूप में 'तुलायन्त्र' (जल पम्प) का उल्लेख मिलता है।[12]

नगरों में विभिन्न व्यवसायों की अलग-अलग श्रेणियाँ थीं, जो व्यापार एवं व्यवसाय का कार्य करती थीं। कुछ नगर अपने व्यवसाय के कारण काफ़ी समृद्ध हो गए थे। बाण ने उज्जयिनी के निवासियों को करोड़पति (कोट्याधीश) बताया है। वहाँ के बाज़ारों में बहुमूल्य हीरे-जवाहरात एवं मणियाँ बिक्री के लिए सजी रहती थीं।

इस प्रकार यद्यपि साहित्य में नगरों की समृद्धि का चित्रण है, तथापि भौतिक प्रमाणों से इस बात की सूचना मिलती है कि आर्थिक दृष्टि से यह पतन का काल रहा है। अहिछत्र और कौशाम्बी जैसे नगरों की खुदाइयों के उत्तर गुप्तकालीन स्तर तथा उनके पतन की सूचना देते हैं। ह्वेनसांग के विवरण से भी इस बात की पुष्टि होती है कि 7वीं शती तक कई नगर तथा शहर निर्जन हो चुके थे। इस काल में मुद्राओं तथा व्यापारिक-व्यावसायिक श्रेणियों की मुहरों का घोर अभाव देखने को मिलता है। इस सभी प्रमाणों से सिद्ध होता है कि यह काल व्यापार-वाणिज्य के पतन का काल था और समाज उत्तरोत्तर कृषि मूलक होता जा रहा था।

ग्रामीण एवं नगरीय जीवन में अन्तर:

1. ग्रामीण जीवन के आय के स्रोत कृषि पर आधारित थे।	1. नगरीय जीवन के आय के स्रोत व्यापार-वाणिज्य थे।
2. लोगों के मकानों के द्वार पूर्व दिशा में थे।	2. इनके भी मकानों के प्रवेश-द्वार पूर्व दिशा में थे।
3. ग्रामीण जीवन में लोगों के मकानों की दीवारें मिट्टी की एवं छत घास-पूस की थीं।	3. इनके मकानों की दीवारें पकी ईंटों तथा टाइलों से तथा छत टाइलांे (खपरैलों) से निर्मित थीं।
4. रास्ते एवं गलियाँ कच्ची एवं कीचड़-युक्त थीं।	4. नगरों में पक्की सड़कों का निर्माण होता था।
5. ग्रामीण लोग बिना कटे हुए एवं बिना सिलाई किए हुए श्वेत वस्त्र धारण करते थे।	5. नगरों में लोग श्वेत एवं रंगीन दोनों प्रकार के वस्त्र धारण करते थे।
6. ग्रामीणों के वस्त्र ऊन एवं सूत के बने होते थे।	6. नगरवासी रेशमी वस्त्र धारण करते थे।
7. लोगों का मुख्य आहार- गेहूँ की चपातियाँ, भुने हुए	7. लोगों का मुख्य आहार- गेहूँ एवं चावल, चीनी, घी,

 Copyright © IJSSER 2017, All rights reserved

ISSN: 2455-8834

Volume:02, Issue:12 "December 2017"

दाने, गुड़, घी, माँस और दूध के पदार्थ थे। 8. ग्रामीण लोग गन्दे और साफ़-सफ़ाई पर कम ध्यान देते थे। 9. ग्रामीण लोग प्रायः नंगे पाँव रहते थे। 10. ग्रामीण लोग राज्य को 'भाग' (1/6) कर के रूप में राज्य को देते थे। 11. लोगों के धार्मिक जीवन में शैव, वैष्णव, सौर एवं शाक्त सम्प्रदायों का प्रभाव अधिक था। 12. लोग कम बुद्धि के, फिर भी सच्चे एवं विश्वसनीय थे। 13. ग्रामीणों में बाल-विवाह प्रचलन अधिक था। 14. लड़कियाँ अशिक्षित ही रह जाती थीं। 15. ग्रामीण लोग साधारण जीवन जीते थे। 16. ग्रामीण लोग मदिरा का सेवन करते थे।	माँस और दूध से बने पदार्थ थे । 8. नगरवासी साफ़-सफ़ाई पर पूर्णतः ध्यान देते थे। 9. ये पादुकाओं का प्रयोग करते थे। 10. जबकि नगर के व्यापारी हिरण्य (नक़द) के रूप में राज्य को कर देते थे। 11. जबकि नगरवासी बौद्ध-धर्म को ज़्यादा महत्त्व देते थे। 12. नगरवासी शिक्षित किन्तु छल प्रपंची थे। 13. नगरों में बाल-विवाह का प्रचलन कम था। 14. कुलीन परिवारों लड़कियों की शिक्षा पर बल देते थे। 15. शहरवासी विलासी एवं समृद्ध जीवन जीते थे। 16. नगरवासी भी मदिरा का सेवन करते थे।

संदर्भ:

1. 'अभ्यंतर सिद्धिका': का0 इ0, जि0-4, नं0-31, पंक्ति-41
2. का0 इ0 इ0, जि0-4, 154, पा0 टि0-4
3. 'Life of Hiuen Tsiang by the shaman Hwui Li' : S. Beal :Londan : 1911
4. वही
5. वही
6. वही

 Copyright © IJSSER 2017, All rights reserved

ISSN: 2455-8834

Volume:02, Issue:12 "December 2017"

7. 'बुद्धिष्ठ रिकार्ड्स ऑफ़ द वेस्टर्न वर्ल्ड': एस0 बील: 1883

8. वही

9. 'प्राचीन भारत का इतिहास': बी0 डी0 महाजन: पृ0-587

10. 'Life of Hiuen Tsiang by the shaman Hwui Li' : S. Beal :Londan : 1911

11. ''गृहे-गृहे अपूज्यत् भगवान खण्डपरशुः।"

12. 'हर्षचरित'

 Copyright © IJSSER 2017, All rights reserved